

संपादकीय

विंस्टन चर्चिल का प्रसिद्ध कथन है कि “हम अपनी इमारतों को आकार देते हैं, बाद में वह हमें आकार देती हैं” और आश्चर्यजनक रूप से यह कथन मनुष्य के अधिकांश अविष्कारों पर बखूबी लागू होता है। ग्रीस की धन की देवी मांटेशा के नाम से उधार लिया यह शब्द मनी अथवा मुद्रा विनिमय के मानक माध्यम के रूप में पूरे विश्व में बिना किसी व्यक्ति, अथवा सत्ता के विशेष प्रयास के, स्वतः ही स्थापित हो गया, यह अलग बात है कि विभिन्न मुद्राओं में वर्चस्व का जो संघर्ष के जन्म के साथ प्रारंभ हुआ आज भी बदस्तूर न केवल जारी है, बल्कि संघर्ष दिनोंदिन उग्र तथा मारक होता जा रहा है।

सच तो यही है कि, मुद्रा से बड़ा बहुरूपिया इस पृथ्वी पर न कभी हुआ है ना होगा।

वस्तु विनिमय के दिनों में मुद्रा के रूप में मानव ने लगभग हर वस्तु का इस्तेमाल मुद्रा के रूप में किया है। एशिया के कई चावल उत्पादक देशों में चावल को मुद्रा के रूप में उपयोग किया जाता था, समुद्र तटीय अंडमान निकोबार आदि क्षेत्रों में नारियल को मुद्रा की तरह उपयोग किया जाता था। एक वक्त ऐसा भी था जब अमेरिका में तमाखू को मुद्रा की कानूनी मान्यता प्राप्त थी। कालांतर में बादाम, अंडे, नमक, गेहूं तथा शक्कर दैनिक आवश्यक वस्तुओं को भी मुद्रा का दर्जा दिया गया। मुर्गा, बकरी, गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, हाथी सब मुद्रा के सिंहासन पर कभी न कभी विराजमान हो चुके हैं। फिर बारी आई चमकीले रुपहले सोने चांदी जैसी बहुमूल्य धातुओं की। इतिहास बताता है कि अमेरिका के एक चुनाव का तो प्रमुख मुद्दा ही यही था की मुद्रा के रूप में उसके क्षेत्रों में सोने का उपयोग किया जाए अथवा चांदी का।

अंततः सोना और चांदी ने मुद्रा के सबसे शक्तिशाली, उस शाश्वत रूप में अपने आप को स्थापित किया जो तब से लेकर आज भी विभिन्न रूपों में अपनी कमोवेश सर्वत्र सत्ता बनाए हुए हैं। फिर आई पेपर करेंसी जो कि ज्यादातर देशों में आज भी चल रही है, पर अब आभास होता है कि इसके भी दिन बस लदने ही वाले हैं।



हमारी अभिव्यक्ति को लिखा जाएगा तो वह साहित्य बनेगा

पिछले दिनों लुप्तप्राय जनजातीय भाषा बिहोर, बिरजिया, आसुरी, मालतो व भूमिज की चार दिवसीय अनुवाद कार्यशाला रांची में भाग लेने वाले आदिवासियों से **कुसुमलता सिंह** के द्वारा की गई बातचीत



फुलेश्वर बिरजिया और **विलियम बिरजिया** रांची में आयोजित अनुवाद कार्यशाला में भाग लेने गुमला जिले से आए थे। उनसे की गई बातचीत--

आप इस कार्यशाला में हिंदी की बाल पुस्तकों का बिरजिया में अनुवाद करने आए हैं? क्या आप सोचते हैं कि इससे बिरजिया भाषा को कोई लाभ होगा?

उ. जी बहुत लाभ होगा। हमारी भाषा को लोग बाहर भी जानेंगे। इसका विस्तार होगा। हम आदिवासियों का जीवन उमंग और उल्लास का जीवन है। हमने इस पर ध्यान नहीं दिया कि शब्द जब हवा में रहते हैं तो उनका कोई मोल नहीं। जब वह लिखा जाता है तो साहित्य बन जाता है। हमारी बिरजिया भाषा अनुवाद के जरिए जब लिखित में होगी तो लोग उसका सम्मान करेंगे।



बिजय बिरहोर और **सिमोन बिरहोर** भी गुमला जिले से इस कार्यशाला में बिहोर बोली में अनुवाद करने के लिए भाग ले रहे थे। उनसे भी यही सवाल पूछने पर उनका उत्तर था।

उ. हमें यह कार्यशाला अच्छी लग रही है। अभी तो

हमारी भाषा में कोई लिपि नहीं है। बिहोर घर में बोली जाती है। हम लोग रस्सी बनाते हैं, नांद बनाते हैं, शिकार भी करते थे पर अब तो वह सब रहा नहीं अब जो भी काम मिला कर लेते हैं। हमारे यहां कुछ स्कूल हैं जहां हिंदी और अंग्रेजी की पढ़ाई होती है। पर हमारी भाषा तो विलुप्त हो रही है। बिरजिया में लोकोक्तियां, कहावतें, गीत, कहानी, बच्चों की कविता, युद्ध के नारे, बलि के मंत्र आदि सभी बोले जाते हैं। फिर भी इसका सही तरीके से अभिलेखन नहीं हुआ है। हमें अपनी भाषा बचाना है। हमारी बोली-भाषा बचेगी तो हमारे जंगल बचेंगे। वनवासियों की वाचिक परंपरा में जंगल और जीवन की अनुभूति सबसे ज्यादा मिलती है। हमारी भाषा बोली हमारी शान है। हम बाहर जाते हैं तो इससे ही हमें पहचान मिलती है। यह हमारी परंपरा है। हमें अपनी बोली बहुत अच्छी लगती है। जैसे भी हो हम इसे बचाना चाहते हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली और टी.आर.आई रांची ने हमें बुलाया और हमें अनुवाद का काम दिया यह बहुत अच्छा लगा। हम अपने गांव जाकर सबसे इसको बतायेंगे।



आसुरी बोली में अनुवाद करते हुए **जगेश्वर असुर** और **सुषमा असुर** का भी यही कहना था कि हमें अपनी बोली पर गर्व होता है। जगेश्वर ने आसुरी बोली का इतिहास भी हिंदी में लिखा है। नई पीढ़ी में अपनी परंपरा और संस्कृति बचाने के लिए बोली बचाना जरूरी है। हम पहले लोहा गलाने का काम करते थे अब तो वह सब खत्म हो गया। हमारे परिवार के बच्चे कहीं जेसीबी चला रहे हैं कहीं